DEV SANSKRITI: Interdisciplinary International Journal (2016), 8, 14-20

वेदों में संगीत की वैज्ञानिकता

चारू हाण्डा

सारांश

भारतीय संगीत की परंपरा युगों–युगों से बहती आ रही है। इतने युग बीत जाने पर भी भारतीय संगीत की लोकप्रियता में कोई अंतर नहीं आया है। कारण यही है कि भारतीय संगीत हमारी अनुपम विरासत है, जिसमें वैदिक युगीन तप व ऋषि मुनियों की साधना का वह अथाह समुद्र निरंतर गतिशील है जिसने संगीत व नृत्य को दिव्य कला का दर्जा दिया है और यह दिव्यता वर्तमान में भी इतनी वैज्ञानिक है कि सम्पूर्ण विश्व भारतीय संगीत से अचम्भित एवं प्रभावित है। वैदिक युग भारत के सांस्कृतिक इतिहास में प्राचीनतम माना जाता है। भारतीय वेद हमारी सभ्यता व संस्कृति के अमूल्य धरोहर हैं, हमारी भारतीय संगीत की सार्वभौमिकता व ज्ञान का अतुल्य भण्डार हैं। भारतीय वेदों में ग्रह, नक्षत्र, देवी–देवता, यज्ञ, मंत्रोच्चारण, गीत–संगीत, नृत्य, योग–तप, चिकित्सा, वाणिज्य, अर्थशास्त्र गणित, रसायन, खगोल शास्त्र आदि विषयों पर वैज्ञानिक दृष्टि से विचार किया गया है। 'नृत्य' एवं 'संगीत' शब्द का प्रयोग भारतीय वेदों में एक नहीं अनेक स्थानों पर हुआ है। वेदों में संगीत में प्रयुक्त मुख्य तीन स्वर, सम–विषम तालें, मंत्रोच्चारण, मुद्राएँ, वीणा–दुन्दुभि इत्यादि वाद्य, वाद्य को स्वर में मिलाना, सामगान शैलियां, नृत्य प्रदर्शन अवसर एवं वातावरण इत्यादि अनेक विषय पक्ष है जो वेदों में संगीत की वैज्ञानिकता को दर्शाते हैं। आज मानव उच्च शिक्षा के दौर में प्रत्येक विषय पर तार्किक व वैचारिक चिंतन करता है। पौराणिक ग्रंथों, शास्त्रों, गाथाओं व अन्वेषणों में वह वैज्ञानिकता के तत्व को खोजता है। अनुसंधान व शोध मानव की इसी प्रवृत्ति के परिचायक हैं। संगीत का क्षेत्र भी अनुसंधान में अनेक क्षेत्रों से भरपूर है। वेदों में संगीत की वैज्ञानिकता सर्वथा प्रासंगिक है। भविष्य में भारतीय संगीत के और अधिक विकास व उत्थान के लिए वेदों का अध्ययन आवश्यक है क्योंकि वेद भारतीय संस्कृति के मूलाधार है और सम्पूर्ण विश्व में संगीत क्षेत्र में एक महान शक्ति के रूप में उभरने के लिए आवश्यक है।

कूट शब्द : वेद, संगीत, वैज्ञानिकता, वैदिक युग एवं वैदिक संगीत

वर्तमान युग में विज्ञान ने प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित किया है। वास्तव में आज तकनीकी विकास के दौर में मानव की खोजी प्रवृत्ति ने इस ब्रह्माण्ड के प्रत्येक तत्व, जीव, ग्रह, सृष्टि चक्र, दिन–रात, ऋतु विचार इत्यादि सभी विषयों पर सूक्ष्म दृष्टि से विचार किया है। संगीत का क्षेत्र भी इससे अछूता नहीं है। संगीत शब्द भारतीय ही नहीं, विश्व साहित्य की ऐतिहासिक श्रृंखला में भी बहुत प्राचीन है। आज विश्व भर में भारतीय संगीत का प्रचार–प्रसार है। मन में जिज्ञासा का भाव उत्पन्न होना लाज़मी है कि आखिर भारतीय संगीत की पृष्ठभूमि में उसका आधार, उसका प्रयोजन व तर्क–वितर्क क्या है जो वर्तमान समय में भी वह वैज्ञानिकता से युक्त दिखाई पड़ता है और वेदों में वर्णित संगीत में कहाँ–कहाँ पर वैज्ञानिकता का भाव दृष्टिगोचर होता है?

संगीत का बखान करने में भारतीय वेद ठोस प्रमाण हैं। वेदों का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि सामवेद प्रारंभ से अंत तक संगीतमय है। उसके मंत्रों का पाठ संगीतमय होता है। 'सामगान' में केवल 3 स्वर प्रयोग किए जाते हैं। धीरे–धीरे स्वरों की संख्या 3 से 4, 4 से 5 और 5 से 7 विकसित हुई।

वैदिक काल में स्वरों का क्रमिक विकास वैज्ञानिक दृष्टि से बहुत सफल प्रयोग है। अन्य वेदों में भी संगीत से संबंधित सामग्री मिलती है जिनमें वैज्ञानिकता के तत्व को ढूंढने का प्रयास इस शोध पत्र के माध्यम से किया गया है। वेदों में संगीत की वैज्ञानिकता के वर्णन से पूर्व वैज्ञानिकता शब्द की व्युत्पत्ति पर दृष्टिपात करते हैं।

वैज्ञानिकता से तात्पर्य

विज्ञान से आशय ऐसे ज्ञान से है, जो यथार्थ हो, जिसका परीक्षण और प्रयोग किया जा सके तथा जो क्रमबद्ध एवं विशिष्ट हो। इसके सिद्धान्त और नियम सर्वदेशिक और सर्वकालिक होते हैं तथा इनका विशद विवेचन संभव है। विज्ञान अंग्रेजी के शब्द साईंस का हिन्दी रूपान्तर है, इसकी उत्पत्ति लेटिन भाषा के शब्द 'साईंटिया' से हुई है। 'साईंटिया' का अर्थ है –ज्ञान या जानना। वास्तव में, भौतिक जगत में कुछ भी घटित हो रहा है, उसका क्रमबद्ध अध्ययन ही विज्ञान है। हम अपने चारों ओर की सृष्टि का ज्ञान अपनी ज्ञानेन्द्रियों द्वारा कर सकते हैं। परन्तु इस भौतिक जगत में कुछ ऐसी अत्यंत सूक्ष्म क्रियाएं हैं, जिनका ज्ञान हम सीधे अपनी इन्द्रियों से नहीं कर सकते। इसके लिए हमें अत्यन्त सूक्ष्मता से चिंतन करना पड़ता है। यहाँ प्रश्न उठता है कि विज्ञान का संगीत से क्या संबंध है? वास्तव में जैसे–जैसे मनुष्य के ज्ञान का क्षेत्र विस्तृत होता गया, वैसे–वैसे विज्ञान में भी नए–नए क्षेत्र विकसित होते गए। वर्तमान में विज्ञान के क्षेत्र इतने विस्तृत हो गए है कि वैज्ञानिकों ने इसे अलग–अलग भागों में बाँट दिया, ताकि इसके अध्ययन में आसानी हो सके। आज भौतिक, रसायन, जंतु, वनस्पति, खगोल व भू–विज्ञान मुख्य शाखाएँ हैं। संगीत के

क्षेत्र में गायन के आधार पर मन्त्र विज्ञान विकसित हुआ है। उसमें शब्दों का ऐसा गुंथन ही प्रधान है, जिसकी बार–बार पुनरावृत्ति (जप) करने पर एक विशिष्ट प्रकार के कंपन साधनकर्ता को प्रभावित करते हैं। यह एक समूचा एवं सुविस्तृत विज्ञान है जो वेदों में वर्णित है। इसे जानने के लिए मन्त्र महाविज्ञान और तन्त्र महाविज्ञान का सांगोपांग अध्ययन आवश्यक है और उन मन्त्रों को सिद्ध करने के लिए जिन अनुष्ठानों की आवश्यकता पड़ती है उनका सही प्रकार अभ्यास कराने के लिए व्यवहार में अनुभवी और व्यक्तित्व में अतीव पवित्र परिष्कृत मार्ग–दर्शक की आवश्यकता पड़ती है। ऐसे सिद्ध मंत्र ही अपना चमत्कार दिखाते हैं। यहाँ वादन संगीत की प्रधानता रहती है, जिसमें ध्वनि तरंगे उत्पन्न की जाती हैं और उन्हें विभिन्न प्रयोजनों के लिए प्रयुक्त किया जाता है। साधारणतया संगीत शब्द का प्रयोग इसी अर्थ में होता है। मन्त्र विज्ञान को 'शब्द ब्रह्म' और स्वर लहरी एवं ताल वाद्यों के समुच्चय को 'नाद ब्रह्म' कहते हैं।

वेदों में संगीत को मोक्ष प्राप्ति का साधन माना गया है (ऋग्वेद, 8/58/13)। वैदिक युग में ऋग्वेद और अथर्ववेद में निहित मंत्रों का प्रयोग मनुष्य की शारीरिक व्याधियों के उपचार के लिए होता था। ऋषियों, महर्षियों द्वारा संगीत के स्वर–तरंगों, स्वरयुक्त मंत्रोच्चारण एवं वाद्यों से उत्पन्न ध्वनियों द्वारा मानव के मानसिक एवं शारीरिक रोगों के उपचार होते रहे हैं (सामवेद 1/2/23)। ऋग्वेद में 'गाथपति' नामक चिकित्सक का उल्लेख है जिसका तात्पर्य संगीत चिकित्सक से है। सामवेद में जो भारतीय संगीत का वेद माना जाता है, रोग निवारण के लिए उसमें राग–गायन का विधान मिलता है (शर्मा, 1996, पृ. 235)। यज्ञों के माध्यम से शारीरिक, मानसिक व्यवहारिक रूप से संतुलित जीवनशैली का विधान था। मंत्र–संगीत (साम), रत्न–मणी तथा औषधी ने ही आगे चलकर आयुर्वेद का रूप धारण किया। वैदिक संगीत में अनेक खगोलीय तत्वों, सूर्य, चन्द्र आदि नव ग्रहों की पूजा–प्रशंसा भी की गई है जो वास्तव में वैदिक युग में संगीत का विज्ञान से घनिष्ठ संबंध स्थापित करते हैं। संगीत में लय–ताल आदि मानक वैदिक युग में ही स्थापित हो गए थे जो वैज्ञानिक दृष्टि से क्रमबद्ध, प्रायोगिक व सर्वमान्य सिद्ध हैं।

इसके अलावा जंतु विज्ञान में हिरन, खरगोश, बकरी, गाय, भेड़, मुर्गी, हाथी इत्यादि को संगीत सुनाकर प्रभावित करना तथा उनसे लाभान्वित होने की चेष्टा वर्तमान युग में इसी आधार पर हुई है। आज के दौर में विज्ञान ने इतना किया है कि इलैक्ट्रॉनिक स्वर पेटी, नगमा, तबला, हारमोनियम अविष्कृत कर मनुष्य के अभ्यास श्रम को बचाया है और सुलभता प्रदान की है। वैदिक युग में संगीत की वैज्ञानिकता के दर्शन हमें अनेक स्थानों पर मिलते हैं। चारों वेदों में संगीत संबंधी वर्णन देखने में आते हैं किंतु उन वर्णनों में वैज्ञानिकता कहाँ–कहाँ और किस रूप में विद्यमान है इसका विश्लेषण ही किया जा सकता है।

वैदिक युग व संगीत

भारत में आर्यों के आगमन से वैदिक युग का प्रारम्भ माना जाता है। इस काल में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र नामक वर्ग स्थापित हो गए थे। ब्राह्मण ही अन्य तीन वर्गों को विद्या तथा संगीत का ज्ञान प्राप्त कराते थे तथा स्त्रियों द्वारा वीणा वादन इस युग की एक विशेषता है।

ऋग्वेद में एक कथा है कि किसी समय कण्व मुनि को अँधेरी कोठरी में बंद कर दिया गया तथा उनके नेत्रों को भी बन्द कर यह आदेश दिया कि बिना नेत्रों के ही उषागमन की बात कहकर वे अपने ब्राह्मणत्व की प्रतिष्ठा प्रमाणित करें। कण्व के ब्राह्मणत्व के कारण अश्विन देवता ने अपने प्रातःकालीन वीणा वादन से उन्हें उषाकाल की सूचना दी, जिस पर असुरों ने उन्हें मुक्त कर दिया (गर्ग, 2007, पृ. 15)। यहाँ यह तथ्य वैज्ञानिक रूप से विचारणीय है कि प्रातःकालीन वातावरण के अनुरूप ही स्वर व धुन श्रवण होने पर प्रातः का आभास हुआ होगा।

'शतपथ ब्राह्मण' से ज्ञात होता है कि यज्ञ में नियुक्त गायक, उत्तम गायक होने के साथ वादक और उत्कृष्ट प्रबन्धकार भी हुआ करते थे। उस काल में स्त्रियाँ उन्हीं पुरूषों से अनुराग करती थी जो संगीत कला में प्रवीण हो। अभिजात कुल की महिलाओं को गायन तथा वादन की शिक्षा दी जाती थी जिससे वे सामगायकों की संगति सहज रूप से कर सकती थी। निम्न कुल की महिलाओं द्वारा यज्ञादि समारोहों पर लोकनृत्य सम्पन्न होते थे।

आर्यों ने संगीत में पवित्रता लाने के लिए इसे धर्म के आवरण में लपेट दिया था। फलस्वरूप संगीत और धर्म का एकीकरण हो जाने से संगीत पवित्रतम बन गया। इसीलिए भारतीय संगीत ने मानव को कभी भी नैतिकता के उच्च स्तर से नीचे नहीं आने दिया। परंतु आगे चलकर संगीत जब धर्म से हटा, तभी उसने मानवता को नैतिकता से गिराना प्रारम्भ कर दिया। आर्यों के जीवन का सम्भवतः ऐसा कोई क्षेत्र नहीं बचा था जिसमें संगीत ने प्रवेश न कर लिया हो। इन लोगों ने देवताओं को प्रसन्न करने का एकमात्र साधन संगीतमय स्तुति एवं प्रार्थना को ही माना था।

वैदिक काल में नृत्य का कार्यक्रम खुले प्रांगण तथा उन्मुक्त वातावरण में एकत्रित जनता के सम्मुख होता था, जिनमें नर तथा नारी दोनों ही भाग लेते थे। उस काल में समूह–नृत्यों का भी आयोजन किया जाता था। अश्वमेघ यज्ञों में मनोरंजन के निमित्त गाथा–गान तथा वीणादि वाद्यों का वादन किया जाता था (गर्ग, 2007, पृ. 15)।

वेदों में संगीत

प्रमुख चार वेद माने गए। ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद। इसमें 'ऋग्वेद' विश्व का प्राचीनतम ग्रंथ माना जाता है जिसमें संग्रहित मंत्रों को ऋक या हिन्दी में 'ऋचा' कहते हैं जिनमें

विभिन्न देवताओं की स्तुतियाँ उपलब्ध होती हैं। 'ऋग्वेद' को अन्य वेदों का मूल बताया गया है। 'यजुर्वेद' में यज्ञों का विधान है। अथर्ववेद में सुखमूलक एवं कल्याणप्रद मंत्रों का संग्रह तथा तांत्रिक विधान दिया गया है। 'सामवेद' मंत्रों का गेय रूप है। चारों वेदों में 'सामवेद' संगीत से सम्बन्धित सबसे महत्वपूर्ण ग्रंथ हैं किन्तु अन्य सभी वेदों में भी संगीत संबंधित वर्णन मिलते हैं। उपरोक्त चार वेदों के अतिरिक्त त्रेतायुग में भरतमुनिकृत पंचमवेद 'नाट्यशास्त्र' भी लिखा गया जिसमें संगीत, नृत्य, नाट्य साहित्य, कला व शिल्प इत्यादि अनेक विषय वर्णित हैं।

जब किसी वाक्य का स्वरहीन उच्चारण किया जाता है तो उसे 'वाचन' कहते हैं। यदि वाक्य में ध्वनि ऊँची–नीची तो हो लेकिन स्वर अपने ठीक स्थान पर न लगे तो इस क्रिया को 'पाठ' कहते हैं और जब किसी वाक्य को इस ढंग से गाया जाए कि उसमें स्वर अपने ठीक–ठीक स्थान पर लगें तो उस क्रिया को 'गान' कहते हैं। इसलिए संगीत का मूल 'सामवेद', पाठ्य का मूल 'ऋग्वेद', गीत का मूल 'सामवेद', अभिनय का मूल 'यजुर्वेद' तथा 'रसों' का मूल 'अथवर्वेद' में हैं (नाट्यषास्त्र, अध्याय–1)।

वैदिक युग में संगीत के मुख्य स्वर

वैदिक युग में संगीत के मुख्यतः तीन स्वर थे– उदात्त, अनुदात्त और स्वरित। इनकी विस्तृत विधियों का निष्पादन वैदिक छन्दों में इस प्रकार किया गया हैं– नि, ध, प, म, ग, रे, स। सामगान के समय वेणु वाद्य के स्वरों द्वारा वीणा आदि वाद्यों को मिलाया जाता था और इस प्रकार वेणु से निकले सामिक स्वरों में क्रुष्ट, प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, मन्द्र और अतिस्वार्य होते थे। इनमें 'क्रुष्ट' स्वर वेणु के सब स्वरों को खोलकर फूँकने से निकला एवं इसी तरह एक–एक छिद्र द्वारा क्रमशः प्रथम से अतिस्वार्य तक के स्वरों को निकाला गया। स्वरोच्चार के स्थूल प्रभाव से उच्चतम, उच्चतर, उच्च, मध्यम, नीच, नीचतर एवं नीचतम स्वर माने गए। इनके उत्पत्ति–स्थान के अनुसार इन्हें मूर्धा, ललाट, भ्रूमध्य, कर्ण, कण्ठ, उर, हृदय भी कहा गया। नारदीय शिक्षानुसार इन्हें, 'म, ग, रे, स, नि, ध, प' के सप्तक माना गया। वैदिक काल में उपरोक्त वर्णित स्वरों का क्रम अवरोही सप्तक कहाँ जाता था (निगम, 2014, पृ. 69)। इस प्रकार स्वरों के नाम–परिवर्तन के साथ वेणु का स्थान वीणा, तानपुरा आदि ने ले लिया। किन्तु वैदिक काल के तीन स्वरों से जिन स्वरों की उत्पत्ति हुई, वे हैं– उदात्त से निषाद और गांधार; अनुदात्त से ऋषभ और धैवत एवं स्वरित से षड्ज, मध्यम तथा पंचम। ये सप्त स्वर ही वर्तमान में आरोही सप्तक क्रम में विद्यमान हैं। आरोहीं–अवरोह की परिपाटी वैदिक काल से आरम्भ होती है (निगम, 2014, पृ. 69)। वेणु वाद्यों के स्वरों द्वारा वीणा आदि वाद्यों का मिलाया जाना वैदिक युग में शास्त्रीय संगीत में वैज्ञानिक प्रक्रिया को दर्शाता है।

आज का वैदिक उच्चारण एवं साम–गान संसार की सबसे प्राचीन प्राप्य गायन–विधि है। वेद–गायन आज वैसा ही है, जैसे चार या पाँच हजार वर्ष पहले रहा होगा। इस गायन के स्वरूप–रक्षण के लिए जो अद्भुत विधि बनी थी, वह विकृति के नाम से प्रसिद्ध है। इस विधि में एक–एक शब्द के एक–एक अक्षर का गायन अनेक क्रमों से किया जाता है। इन क्रमों की कठिनाई इतनी ही होती है कि स्वर, शब्द, लय या दीर्घ–ह्रस्व के रूपों में अन्तर या अशुद्धि किसी तरह से नहीं हो सकती (गर्ग, 1969, पृ. 37)।

वेद गायन व स्वर संख्या

हर एक वेद अलग तरह से गाया जाता है। हर–एक में स्वर की संख्या भिन्न है। ऋग्वेद के गायन में तीन स्वर हैं, जोकि उदात्त, अनुदात्त और स्वरित कहे जाते हैं। यजुर्वेद में भी उदात्त, अनुदात्त और स्वरित तीन स्वर हैं, पर सामवेद में सात स्वर हैं, जिनके नाम प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, क्रुष्ट, मन्द्र, अतिस्वर्य हैं। वेद की हर एक शाखा के लिए भिन्न उच्चारण और गायन के नियम हैं। 'शतपथ ब्राह्मण' में स्वरित स्वर नहीं है। यह सिर्फ उदात्त और अनुदात्त स्वरों से गाया जाता है।

वैदिक शिक्षा में लिखा है कि ऋग्वेद का गायन एक स्वर से होता है। यह 'आर्चिक' के नाम से प्रसिद्ध है। यजुर्वेद का गायन दो स्वरों से होता है, उसको 'गाथिक' कहा जाता है। सामवेद का गायन तीन स्वरों से होता है, जो 'सामिक' कहा जाता है। यहाँ एक स्वर–गायन का अर्थ स्वर की तीन अवस्थाएँ लेना पड़ता है अर्थात् उदात्त, अनुदात्त और स्वरित। आधुनिक हिसाब से ऋग्वेद तीन स्वरों, यजुर्वेद पाँच स्वरों एवं सामवेद सात स्वरों से गाया जाता है (गर्ग, 1969, पृ. 38)।

वैदिक संगीत का उत्तम रूप साम–गान में दिखाई पड़ता है। इसके विभिन्न स्वरूप हैं, जो शाखा के नाम से प्रसिद्ध हैं। आजकल कौथुमी शाखा एवं राणायनी शाखा प्राप्य हैं, अन्य शाखाएँ लुप्त मानी जाती हैं। साम–गान धर्म संगीत का प्रधान स्वरूप है। इसके साथ शुद्ध मार्ग संगीत एवं अनेक रूप के देशी संगीत भी रहे हैं। वेदों में कई वाद्यों के नाम मिलते हैं (गर्ग, 1969, पृ. 37–38)।

ऋग्वेद में संगीत की वैज्ञानिकता

ऋग्वेद में गीत के लिए गीर, गातु, गाथा, गायत्र, गीति तथा साम शब्दों का प्रयोग किया जाता है। 'ऋग्वेद' की ऋचाएँ, स्वर, लिपियों में निबद्ध होने पर 'स्त्रोत' कहलाती हैं। 'गीत' के चार अंग बताए गए हैं– 'स्वर', 'पद', 'ताल' तथा 'मार्ग'। षडज इत्यादि स्वरों को 'स्वर' कहते हैं तथा अकारादि स्वरों से युक्त व्यंजनों का सार्थक या अर्थहीन समूह 'पद' कहलाता है। विशिष्ट भाग सहित भाषाओं की आवृत्ति को 'ताल' कहते हैं और द्रुत, मध्य या विलम्बित लय से युक्त प्रकार ही 'मार्ग' कहलाता है (गर्ग, 2007, पृ. 248)। ऋक् का स्वरयुक्त गान होता था।

दश मण्डल में 1028 सूक्त हैं। अग्नि, इन्द्र, वायु, वरूण, सोम, विश्वामित्र, वामदेव, अत्रि, भरद्वाज, वशिष्ठ आदि देवताओं व ऋषियों के प्रशस्तिसूचक मन्त्रों का संकलन 'ऋग्वेद' है। अष्टम मण्डल 'प्रगाथ' में 92 सूक्त हैं जिनका स्वरूप गेय है। नवम मण्डल में 114 सूक्त हैं जो सोमदेवता के लिए हैं। सोमलता से सोमरस निकालते समय वैदिक स्वरों के संयोग से इन सूक्तों का गान होता था। सोमरस का नाम 'पवमान' था एवं सोमरस के अधिपति सोमदेव या चन्द्रदेव थे (परांजपे, 1994, पृ. 3)।

ऋग्वेद के अनुसार साम के गायन से संपूर्ण नभोमण्डल प्रतिध्वनित हो उठता था। पक्षियों के गुंजन की उपमा 'उद्गाता' के सामगान से की गई है। ऋग्वेदकाल में सामों के आविष्कर्त्ता आचार्यों में अंगिरस, भारद्वाज तथा वशिष्ठ का उल्लेख हुआ है जो क्रमशः 'स्त्रोत', 'बृहत्साम' तथा 'रथन्तरसाम' के उद्भावक थे। एक मंत्र में स्पष्ट रूप से यह भी बताया गया है कि सामगान उन्हीं विद्वानों को प्राप्त हो सकता है, जो अध्यवसायी तथा जागरणशील हैं।

ऋग्वेद में गीत तथा वाद्य के साथ नृत्यकला का भी प्रचुर अस्तित्व पाया जाता है और कहा गया है कि खुले आकाश के नीचे नृत्य करते हुए लोगों के पदों की धूल से आकाश आच्छादित हो जाता था। यज्ञवेदी के चारों ओर स्त्रियों द्वारा मण्डलाकार नृत्य करना वैदिक काल में अत्यन्त शुभ माना जाता था (गर्ग, 2007, पृ. 253)।

इस प्रकार अग्नि, वायु, वरूण इत्यादि ग्रहों व देवी–देवताओं की यज्ञ–कर्म में प्रतिष्ठापना में मंत्रोच्चारण का प्रयोग वर्तमान में ज्योतिषशास्त्र तथा हवन–यज्ञ इत्यादि धार्मिक अनुष्ठानों में होता है। पूजा–अर्चना के माध्यम से राशि में ग्रहों के अच्छे–बुरे प्रभाव को बढ़ाया–घटाया जाता है। ऋग्वेद में प्रयुक्त ग्रहों को विज्ञान भी मानता है। खगोल विज्ञान के अन्तर्गत सूर्य, चन्द्र इत्यादि देवताओं को तारा माना गया है व अग्नि, वायु, वरूण, शनि, मंगल इत्यादि ग्रहों को ब्रह्माण्ड का महत्वपूर्ण अंग माना है। ऋग्वेद में प्रयुक्त संगीत का वर्णन वैज्ञानिक है। ऋग्वेद में वर्णित दुन्दुभि, वाण, नाड़ी, वेणु, कर्करि, गर्गर, गोधा, पिंग तथा आघाटि इत्यादि वाद्यों का उल्लेख वैज्ञानिक पक्ष को और अधिक मजबूत बनाता है क्योंकि उपर्युक्त वाद्यों का प्रयोग गान के साथ साहचर्य बनाए रखने के लिए आवश्यकतानुसार ही किया जाता था।

सामवेद में संगीत की वैज्ञानिकता

सामवेद पूर्णरूप से संगीतमय है। सामवेद या सामसंहिता के दो भाग थे। पृथक लघु भाग का नाम आर्चिक था। सामवेद के दूसरे भाग का नाम स्तौमिक है, जिसमें देवताओं व ऋषियों के प्रशंसासूचक (स्तोम) 1223 सूक्त हैं। स्वरयुक्त ऋक् या साम की समष्टि ही सामवेद है। एक ही साम का विभिन्न सूक्तों या मन्त्रों में अथवा भिन्न–भिन्न सामों का एक ही मन्त्र में गान होता था। जिन मन्त्रों पर साम गाया जाता था उन्हें 'योनि' कहते थे। सामवेद में लगभग 575 योनियों का समावेश है। पूर्वार्चिक, आरण्यसंहिता एवं उत्तरार्चिक इन तीन गान–भागों से सामवेद की श्रीवृद्धि हुई है। स्वरयुक्त ऋक् समूहों द्वारा असंख्य सामगान की सृष्टि हुई एवं वैचित्र्यपूर्ण शैलियों से इनका गान होता था।

ग्रामगेय–गान को 'गेय' या 'योनि' गान भी कहा जाता था क्योंकि ऊह एवं उह्य गान (रहस्यगान) के मूल सूत्रों की सृष्टि ग्रामगेय–गान से ही हुई थी। ग्रामगेय, अरण्यगेय, उह्य एवं उह सामगान के ये चार प्रकार थे। ग्रामगेय–गान गृहस्थों, गोष्ठियों, अथवा साधारण जनों के लिए निर्धारित था। अरण्यगेय–गान के बाद उह्यगान की शिक्षा एवं गाने की परिपाटी थी। अरण्यगेयगान अरण्यवासी ऋषियों के लिए निरूपित था। ग्रामगेय–गान से ही सम्भवतः वैदिकोत्तर गान्धर्व या मार्ग संगीत का एवं मार्ग संगीत से क्रमशः देशी व क्रमशः शास्त्रीय गान पद्धति का विस्तृत विकास हुआ (प्रज्ञानानन्द, 2003, पृ. 4)।

वैदिक–कालीन गान शब्द को स्पष्ट करते हुए पूर्व मीमांसाकार जैमिनि का कथन है कि गान एक आभ्यन्तरिक प्रयत्न या कार्य है। प्राणवायु नाभि से चल–कर कण्ठ तक आती है एवं उसके आहत होने पर शब्दों का सृजन होता है। तदुपरान्त कण्ठ में स्वरों का निर्माण होता है एवं कण्ठ ही वह माध्यम है जिसके द्वारा प्राणवायु गानोपयोगी शब्द या नाद की सृष्टि करती है। सामगान में स्तोम तीन थे–वर्णस्तोम, पदस्तोम एवं वाक्यस्तोम। वाक्यस्तोम के नौ प्रकार थे। इन्हीं स्तोमों का अनुकरण कर भरत ने नाट्यशास्त्र में नाटकोपयोगी बहिर्गीतों को प्रचलित किया था। वाद्य संगीत को भरत ने निर्गीत कहा है। तत्कालीन संगीत में छन्द एवं लय के महत्वपूर्ण प्रयोग उल्लेखनीय हैं। सामवेद में आज के ही समान सम एवं विषम छन्द या लयों का प्रयोग होता था। अनुष्टुप, वृहती, पंक्ति, त्रिष्टुप, जगती, विराट आदि छन्दों का क्रमशः यश–कामी, यज्ञकामी, वीर्यकामी, पशुकामी, अन्नप्रार्थी आदि अनुष्ठानों के लिए पाठ होता था (प्रज्ञानानन्द, 2003, पृ. 5)।

उपरोक्त वर्णन दर्शाता है कि किस प्रकार गान क्रिया का विज्ञान नाभि से कण्ठ तक शब्द व स्वरों का निर्माण प्राणवायु के द्वारा करता था। अनुष्ठानों में पाठ करने हेतु अनेक छन्दों का प्रयोग साहित्यिक समृद्धि को दर्शाता है, सम व विषम लयों का प्रयोग वैज्ञानिकता को दर्शाता है।

सामवेद एवं सामगान

सामवेद में यज्ञ मण्डल को सदः कहा गया है एवं यज्ञक्रिया हेतु सामगायन एक अनिवार्य आवश्यकता थी। बहिष्पवमान, पवमान, आदि गानों का सामवेद में विस्तृत विवेचन है। आठ वसु, ग्यारह रुद्र, बारह आदित्य, प्रजापति, वषट्कार, इस प्रकार कुल तैंतीस यज्ञ के देवता थे एवं इन्हीं मूल तैंतीस देवताओं से तैंतीस कोटि देवताओं की कल्पना की गयी। सामवेद का यज्ञों में गान होता था इसीलिए पूर्णज्ञान हेतु तत्कालीन यज्ञों का ज्ञान आवश्यक हो

जाता है। सामगान में ऋक् समूह के स्वरात्मक पाठ एवं गान हेतु छन्द एवं उतरा नामक दो ग्रन्थ हैं। मन्त्रों या सूक्तों का केवल पाठ ही नहीं वरन् स्वर, छन्द एवं लय समन्वित कर उन्हें गाने की परिपाटी थी। सामगान के लिए सप्त–स्वरों के प्रयोग होते थे जिन्हें क्रमशः प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, मन्द्र, कृष्ट एवं अतिस्वर कहते थे। सामगान में लौकिक स्वरों के प्रयोग नहीं थे क्योंकि नारद ने भी अपने सप्तस्वरों के लिए लौकिक षडजादि सप्तस्वरों का उल्लेख किया है, वैदिक प्रथमादि स्वरों का नही।

सामगान में पाँच विभिन्न उच्चारण शैलियों का उल्लेख है जो इस प्रकार हैः–

1. शब्द या स्वर पर बल देकर
2. दो उच्चारण रीतियों में अन्तर का निर्णय कर उन्हें इच्छानुसार सजाने पर।
3. स्वरों की उच्चता या दीर्घता पर।
4. शब्द या स्वर की सौष्ठव वृद्धि के आधार पर ।
5. विभिन्न उच्चता या दीर्घता के बीच–बीच में स्वरों के पारस्परिक परिमाप निर्णय पर (सेन, 2002, पृ. 5)।

स्वरों के विराम हेतु दण्ड चिन्ह (1) का प्रयोग होता था। सामगान में सुसंगत व सुमिश्रित स्वर, छन्द व लय का प्रयोग वैदिक युग में शास्त्रीय संगीत की वैज्ञानिकता को दर्शाते हैं। इसके अतिरिक्त सामगान में प्रयुक्त पांच विभिन्न उच्चारण शैलियों का प्रयोग बहुत ही सफल, सार्थक व सटीक जान पड़ता है।

सामवेद एवं लयवाद्य वर्णन

वेदों में विभिन्न लयवाद्यों का विशद उल्लेख उपलब्ध है किन्तु तत्कालीन तालस्वरूपों का विवेचन उनमें नहीं है। सामवेद भारतीय संगीत की परम्परा का प्रथम महान् ग्रन्थ है क्योंकि इस वेद के प्रत्येक मन्त्र को, उसकी प्रत्येक ऋचा को आज तक स्वरात्मक रूप दिया जाता है। सामगान में द्रुत, लघु, गुरू, प्लुत आदि मात्राओं का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान था।

सामगानोत्तर युग में भी लयवाद्यों एवं लयसाम्यों के प्रत्येक संगीतानुष्ठान में प्राथम्य से हुए प्रयोग उनके महत्व को अति प्राचीन काल से प्रतिष्ठित करते हैं। ईसा से छः शताब्दी पूर्व भी भारतीय संगीत में गन्धर्व, किन्नर एवं अप्सराएँ लयात्मक स्वरूपों का विधिवत् अभ्यास करती थीं। नारद, तुम्बरू, विश्वखिल, विश्वावसु, हाहा, हूहू, प्रभृति श्रेष्ठ गन्धर्वों का उल्लेख प्राचीन युग से पौराणिक युग तक विद्यमान है। ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी में अष्टाध्यायी पाणिनि के भाष्यकार पंतजलि ने तत्कालीन अभिनय शास्त्र का विवेचन करते हुए संगीत का उल्लेख किया है। सामगान के माध्यम से ऋचाओं का पाठ करने के लिए दो ग्रन्थ थे, जिनमें से प्रथम का नाम छन्द और दूसरे का नाम उत्तरा था। सामवेद में लयगति हेतु छन्दों का महत्व इसी से स्पष्ट हो जाता है। सामवेद को संगीत का मूल ग्रन्थ मानकर विभिन्न ब्राह्मण ग्रन्थों, पुराणों एवं उपनिषदों में, साथ ही, संगीत शास्त्रों में सामवेद की प्रशंसा की गयी है (सेन, 2002, पृ. 7)।

यजुर्वेदकाल में संगीत की वैज्ञानिकता

यजुर्वेदकालीन यज्ञों में सामगान अनिवार्य समझा जाता था एवं गान विस्तार हेतु प्रमुख गायक उद्गाता के साथ उपगाताओं की योजना होती थी। तत्कालीन सामगान शिक्षा सामवेदियों तक ही सीमित न रहकर अन्य वैदिकों के लिए आवश्यक समझी जाती थी। वैदिक संगीत के साथ–साथ लौकिक संगीतों के रूप में गाथा, नाराशंसी आदि भी समाज में प्रचलित थे। यजुर्वेदकालीन महिलाएँ भी लयशास्त्र में प्रवीणा थीं एवं गायन व नृत्य में लयकारी का प्रदर्शन करती थी (सेन, 2002, पृ. 8)। यजुर्वेद काल में गायन, वादन तथा नृत्य के साथ मात्रा गिनकर हाथ से ताली देने की प्रणाली का वर्णन मिलता है।

हाथ से ताल देना व लयकारी प्रदर्शन की क्रिया क्रमबद्ध व नियमबद्ध होती है, लय व ताल के सिद्धान्तों पर आधारित होती है जो यजुर्वेद काल में संगीत की वैज्ञानिकता को स्पष्ट करती है।

अथर्ववेद में संगीत की वैज्ञानिकता

अथर्ववेदकाल में गाथा व नाराशंसी के अतिरक्त 'रैम्य' आदि लौकिक गीत प्रचार में आये। इस वेद में उल्लेख है कि ''दुन्दुभि का निर्माण काष्ठ से किया जाता था, उसका मुख परिपक्व चर्म से बनता था तथा इस मुख को चारों ओर से चर्म की बादियों से बद्ध किया जाता था। बादियों को मसृण रखने के लिए तेल का लेपन किया जाता था'' (परांजपे, 1969, पृ. 63)।

वेदकालीन अवनद्ध वाद्यों की उन्नत अवस्था उपरोक्त वर्णन से उद्घाटित होती है। वेदकालीन संगीत हेतु ताल नियमों का जो व्यवस्थित क्रम था वह सचमुच विश्वसंगीत हेतु अनुकरणीय है। गान क्रिया के अनुकूल श्वास–प्रश्वास नियन्त्रण की प्रणाली थी जिसे 'पार्वन' कहते थे।

ह्रस्व, दीर्घ तथा प्लुत लक्षण की दृष्टि से तत्कालीन मात्राओं के आधुनिक नाम जैसे– या अणुद्रुत या द्रुत या ह्रस्व, 1) या अर्ध्यर्घ, 2 या दीर्घ, 2) या अर्धतिस्त्र, 3 या प्लुत एवं 3) या अर्ध चतस्त्र आदि दिये जा सकते हैं।

वैदिक युग में नृत्य

नृत्य की कला भारतवर्ष में प्राचीन काल से चली आ रही है। यह कला महत्वपूर्ण उत्सवों पर या प्रकृति के सौंदर्य को देखकर सम्पन्न होती थी। इसी आधार पर ऋग्वेद में गीत, वाद्य के साथ नृत्य–कला का प्रचुर उल्लेख है। ऋग्वेद में नृत्य तथा वाद्यवादन का उल्लेख हुआ है (ऋग्वेद, 5/33/6)। ऋग्वेद में ही एक अन्य ऋचा में उषा की उपमा नर्तकी से दी गई है (ऋग्वेद, 1/92/4)।

वैदिक मतानुसार नृत्य शब्द की उत्पत्ति ''नृ'' धातु से हुई है। ऋग्वेद में लिखा है– *''बाहिष्टोवां हवानां स्तोमो दूतो हुवन्नरा, नरा मनुष्या नृत्यान्ति कर्मसु।''* अर्थात् नर मनुष्य को कहते हैं और ये कार्य करते समय नृत्य करते रहते हैं, शरीर को हिलाते–डुलाते रहते हैं, इधर–उधर फेकते रहते हैं। ऋग्वेद में 'नृत्यमानो देवता' ऐसा वर्णित है अर्थात् नृत्य करते हुए मानो देवता अथवा देवतागण नृत्य कर रहे हैं (ऋग्वेद, 5/33/6)।

अथर्ववेद में एक मन्त्र इस प्रकार है–
आनृत्यन्तः शिखण्डिनः गन्धर्वस्याप्सरापतेः। (अथर्ववेद, 5/37/7)
इस पूरे मन्त्र में कहा गया है कि उर्वशी, धृताची, रम्भा, तिलोत्तमा और मेनका आदि अप्सराओं के गन्धर्व पति शिर पर शिखण्डी धारण किए हुए नृत्य करते हैं। 'अथर्ववेद' में कहा गया है कि गन्धर्वों और अप्सराओं का विशेष कार्य मधुर–गायन और मोहक नृत्य करना ही था (अथर्ववेद, 4/37/4)। अथर्ववेद में लिखा है– *यास्याय गायन्ति नृत्यन्ति भूम्याम् मृत्यर्व्यलवा।* अर्थात आनन्द भरी किलकारी को कंठ से निनादित करने वाले जिस भूमि पर नाचते रहते हैं (आजाद, 2008, पृ. 12)।

यजुर्वेद में कहा गया है, 'नृताय सूत गीताय शैलूषम', अर्थात् नृत्य करने वाले सूत एवं गीत गाने वाले शैलूष होते थे (यजुर्वेद, 30/6)।

नाट्यशास्त्रानुसार नृत्य की उत्पत्ति–
वेदोपवेदैः सम्बद्धो नाट्यवेदो महात्मना।
एव भगवता सृष्टो ब्रह्मणा सर्ववेदिना।। (दवे, 2004, पृ. 2)

उपरोक्त श्लोक में स्पष्ट उल्लेख है कि सर्वज्ञ ब्रह्मा ने वेदों तथा उपवेदों से युक्त नाट्यवेद की रचना की। पवेद से यहाँ यही तात्पर्य है। नृत्यकला प्रदर्शन ही नहीं, अपितु स्वयं को ईश्वर से जोड़ने का साधन है। द्वारिका महातम्य में लिखा है– *यो नृत्यति प्रहृष्टात्मा भावैरत्यन्त भक्तितः स निर्दहति पापानि जन्मान्तरशतैरपि।* अर्थात् जो प्रसन्नचित श्रद्धा–पूर्वक, व भक्तिपूर्वक भावों सहित नृत्य करते हैं, वे सैंकड़ो जन्म–जन्मान्तर के पापों से मुक्त हो जाते हैं (गर्ग, 1994, पृ. 12)।

वैदिक यज्ञों के अवसरों पर किए जाने वाले नृत्य आध्यात्मिक तथा आनंदोत्पादक थे। मंदिरों में इष्टदेव की उपासना निश्चित गायकों नर्तकों द्वारा विस्तृत नियमों के अनुसार होती थी। ऐसा विश्वास था कि मन्दिर केवल भगवान के रहने के स्थान नहीं है, यह ब्रह्माण्ड का स्वरूप है, जिसमें विभिन्न प्रतीकों द्वारा सृष्टि की नियामक शक्तियों का चित्रण किया जाता है, विभिन्न देवी–देवताओं के अनुरूप नर्तक विभिन्न प्रकार की मुद्राएं, अंगहार तथा रचनाएं प्रस्तुत करते थे।

नृत्य में तालबद्धता, नृत्तकरण व अंगहारों का प्रयोग, विलम्बित से मध्य, मध्य से द्रुत, द्रुत से अति द्रुत में प्रवेश करना विशेष नियमावली व क्रमबद्धता को दर्शाता है। अतः वैदिककाल से ही नृत्य वैज्ञानिक प्रक्रिया रहा है।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि वैदिक युग में संगीत के अनेक विषय व पक्ष अपने में वैज्ञानिकता को समेटे हुए हैं व वर्तमान में संगीत जगत के लिए बेहद लाभप्रद सिद्ध हुए हैं। संगीत में प्रयुक्त विविध तालें व लय सुनिश्चित मात्राओं व बोलों पर ही आधारित रहती है। रागों का समय निर्धारण, सृष्टि चक्र, ब्रह्माण्ड, ऋतुओं इत्यादि पर आधारित है जो विज्ञान का एक भाग है। संगीत में स्वरों के बीच मध्यांतर पूर्णतः वैज्ञानिक है। स्वरों की आंदोलन संख्या निश्चित है। 'स व प' के मध्य कितना श्रुत्यांतर है यह सभी भरत द्वारा 'नाट्यवेद' में निर्दिष्ट है। कुल 22 श्रुतियाँ व ग्राम–मूर्च्छना पूर्णतः वैज्ञानिक स्तर पर कायम की गई हैं। भरत की 'सारणा चतुष्टयी' दर्शाती है कि चल व अचल वीणा पर किया गया प्रयोग वैज्ञानिक रूप से कितना सफल था। वैदिक युग के तीन स्वरों से किस प्रकार सप्त स्वरों की सृजना व आरोह–अवरोह की पारिपाटी आरम्भ हुई वह प्रणाली भी सुसंगत एवं तार्किक है। वैदिक युग में वेणु वाद्यों के स्वरों द्वारा वीणा वाद्य को मिलाया गया। वर्तमान में विभिन्न वाद्यों को स्वर में मिलाने की प्रक्रिया हेतु प्रेरणा के स्त्रोत है और यह दर्शाता है कि वैदिक युग में वाद्यों को स्वरित करने का ढंग कितना वैज्ञानिक व सटीक था। वैदिक युग में मंत्रोच्चारण द्वारा चिकित्सा, देव प्रशंसा व ग्रह शांति संबंधित यज्ञकर्म वर्तमान में भी उतने ही तर्कसंगत है व दैनिक जीवन का अंग हैं। सम–विषम तालों का प्रयोग वैदिक युग व वर्तमान दोनों में उपयुक्त रूप से देखने में आता है। गायन, वादन व नृत्य करते हुए ताली दिखाना वैदिक युग की ही देन है। गान क्रिया में अनुकूल श्वास–प्रश्वास नियन्त्रण प्रणाली 'पार्वन' वैदिक युग की अहम प्रक्रिया थी जो मानव शरीर व मन के साथ गान के लिए भी उपयुक्त थी। संगीत व नृत्य साधना पद्धति में भी प्रारम्भ से गहन अध्ययन का प्रशिक्षण शुरू किया जाता है। इस प्रकार संगीत की वैज्ञानिक प्रक्रिया का अनुसरण करता हुआ संगीत साधक समय के साथ–साथ अपनी कला में प्रवीणता को हासिल करता है।

चारू हाण्डा, शोधार्थी, संगीत विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़, भारत।

संदर्भ सूची

आजाद, तीरथराम (2008). *कत्थक ज्ञानेश्वरी।* दिल्ली– नटेश्वर कला मन्दिर।

गर्ग, लक्ष्मीनारायण (1969). *संगीत निबन्धावली (प्रथम भाग)।* हाथरस, उत्तर प्रदेश– संगीत कार्यालय।

गर्ग, लक्ष्मीनारायण (1994). *कत्थक नृत्य।* हाथरस, उत्तर प्रदेश– संगीत कार्यालय।

गर्ग, लक्ष्मीनारायण (2007). *संगीत विशारद* / हाथरस, उत्तर प्रदेश– संगीत कार्यालय।

प्रज्ञानानन्द, स्वामी (2003). *भारतीय संगीत का इतिहास (भाग–2)* / कलकत्ता, आनन्दधारा प्रकाशन।

परांजपे, श्रीधर शरदचन्द्र (1969). *भारतीय संगीत का इतिहास* / वाराणसी– संस्कृत सेवा प्रकाशन।

परांजपे, श्रीधर शरदचन्द्र (1994). *भारतीय संगीत का इतिहास (वैदिक काल से गुप्तकाल तक, भाग–2)* / वाराणसी– चौखम्बा प्रकाशन।

दवे, प्रेम (2004). *कत्थक नृत्य परम्परा* / जयपुर– पंचशील प्रकाशन।

निगम, रंजना (2014). *नृत्य और संगति : प्राचीन कला में प्रागैतिहासिक काल से गुप्त काल तक* / दिल्ली– बी0आर0 रिदम।

शर्मा, पंकज माला (1996). *साम गान : उदभव व्यवहार एवं सिद्धांत* / होशियारपुर– कात्यान वैदिक साहित्य प्रकाशन।

सेन, अरूण कुमार (2002). *भारतीय तालों का शास्त्रीय विवेचन* / भोपाल– हिन्दी ग्रन्थ अकादमी।

ऋग्वेद, 1 / 92 / 4; 5 / 33 / 6; 8 / 58 / 13

यजुर्वेद, 30 / 6

सामवेद, 1 / 2 / 23

अथर्ववेद, 4 / 37 / 4; 5 / 37 / 7